ISSN: 3107-3557 (Online)

# 'रामायण' में निर्देशित राजा के कर्तव्य

**Dr. Nayana C. Patel**
Associate Professor in Sanskrit
Smt. B. V. Dhanak College, Bagasara

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं, अतः विश्व के समस्त कवियों के गुरु हैं। उनका आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण भूतल का प्रथम काव्य है। यह रामायण सभी के लिए पूज्य वस्तु है। भारत के लिए तो यह परम गौरव की वस्तु है और देश की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है। 'रामायण' समस्त काव्यों का बीज है।[1] रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे राष्ट्रीय महाकाव्य प्रमाणित करते हुए कहा है-'रामायण में भारतवर्ष क्या कहता है, भारतवर्ष ने रामायण में किस आदर्श को महत्त्व दिया है-हम लोगों को विचार करना चाहिए। रामायण में केवल कवि का ही परिचय नहीं है, किन्तु भारतवर्ष का परिचय प्राप्त होता है ।[2] व्यासादि सभी कवियोंने इसीका अध्ययन कर पुराण महाभारतादिका निर्माण किया ।[3] बृहद्धर्मपुराण में यह बात विस्तार से प्रतिपादित है। व्यास जी ने अनेक पुराणों में रामायण का माहात्म्य गाया है। कविकुलगुरु कालिदास ने 'रघुवंश' में आदिकवि का दो बार स्मरण किया है। भवभूति को करुणरस का आचार्य माना गया है, किंतु हम देखते हैं कि उन्हें इसकी शिक्षा आदिकवि से ही मिली है। वे भी उत्तररामचरित के दूसरे अंक में उन्हीं का स्मरण करते हैं।[4] इसी तरह महाकवि भास, आचार्य शंकर, रामानुजादि सभी संप्रदाय आचार्य, राजा भोज आदि परवर्ती विद्वानों से लेकर हिंदी साहित्य के प्राण गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी विविध पदों से इनका बार-बार श्रध्धापूर्वक स्मरण किया है; कृतज्ञता ज्ञापित की है। महर्षि की दृष्टि में हमें ज्योतिष, तन्त्रविद्या, आयुर्वेद आदि शास्त्रों की प्राचीनता एवं समीचीनता ज्ञात होती है। धर्मशास्त्र के लिए तो यह ग्रन्थ परम प्रमाण है। यहाँ अर्थशास्त्र की भी पर्याप्त सामग्री मिलती है। इसी तरह वाल्मीकि की राजनीति बहुत उच्च कोटि की है। उनके सामने सभी राजनीतिक विचार तुच्छ प्रतीत होते हैं। राजनीति से ही मानव-जीवन आद्योपान्त संरक्षित एवं संचालित है। श्रीरामचन्द्र की राजनीति की दिव्य आभा से संसार का कण-कण आज भी आभामय है। वाल्मीकि ने अपनी तलावग्राहिनी लोकोत्तर प्रतिभा से जहाँ जीवन के सभी सन्दर्भों की विशद व्याख्या दी, वहाँ राजनीति को भी परिपूर्ण रूप से सजाकर प्रस्तुत किया।[5]

वाल्मीकि रामायण की राजनीति राजा, मन्त्रिमण्डल, भूमि, दुर्ग, कोष, सेना और मित्रराज्य इन सात अंगो को प्रमुखता देती थी। जिसका सांकेतिक विवरण वेदों से ही प्राप्त होता है। प्रजा की सुरक्षा एवं समृद्धि के लिए अपने अंगो सहित सशक्त संस्था राज्य के रूप में विद्यमान थी। राज्यसंस्था का मूल उद्देश्य प्रजा का कल्याण सम्पादन था। राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था का मूल आधार धर्म था, जो न्याय और उच्च आदर्शों का प्रतिरूप था। किसी भी राजा की यही पहचान थी कि वह धर्म के अनुसार प्रजा-पालन करता हुआ समस्त प्रजाजनों को प्रसन्न रखता था। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में राज्यसंस्था के निर्माण में दैवी शक्ति का आधार माना है। आदि स्वर्णकाल के अनन्तर कालक्रम से मानवता मत्स्यन्याय से ग्रस्त हो गई। उस परिस्थिति से मानवता की रक्षा के लिए दैवी शक्तियों ने राजा या राज्यसंस्था की सृष्टि की, ऐसा उल्लेख प्राचीन ग्रंथो में प्राप्त है।[6] रामायण में राजा के प्रारंभिक स्वरूप को दैवी शक्ति की सहायता के रूप में ही चित्रित किया गया है। उत्तरकाण्ड में कहा गया है कि सत्ययुग में

कोई राजा नहीं था। देवताओं में शतक्रतु राजा था। मनुष्यों ने भी ब्रह्मा से देवताओं की तरह एक राजा प्रदान करने की प्रार्थना की, जिस पर वह अवलंबित रह सके और पापमुक्त हो सके। इस प्रार्थना पर ब्रह्मा ने इन्द्र तथा समस्त लोकपालों को आहूत किया तथा एक ध्वनि 'क्षुप' उत्पन्न की और उससे पुरुष की उत्पत्ति की। उसी में इन्द्र तथा समस्त लोकपालों की शक्तियों का समावेश हुआ और उसे 'क्षुप' नाम से सम्बोधित करते हुए राजा घोषित किया।[7] 'रामायण' में जो राज्यसंस्था वर्णित है, उसमें परंपरागत राजा की प्रधानता है । शासनसूत्र का संचालक राजा ही होता था। दशरथ और राम के लिए 'रामायण' में सम्राट, सर्वराज, चक्रवर्ती, अधिराज आदि विशेषणों का प्रयोग मिलता है । इन शब्दों का प्रयोग व्यापक न होकर प्रभाव प्रदर्शनार्थ ही स्वीकार किया जा सकता है । राजा दशरथ धर्म, अर्थ और काम का संपादन करने वाले कर्मों का अनुष्ठान करते हुए, अयोध्यापुरी का रक्षण करते थे।[8] राम सम्राट् के पुत्र होते हुए भी विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए जाते हैं। तत्कालीन आदर्श नायक के जीवन की यह एक समीचीन दिशा मानी गई थी। धर्म की रक्षा करने के लिए अपना तन, मन और धन समर्पित कर देना आदर्श राजा का कर्तव्य था । इस कर्तव्य का राम ने परिपालन किया ।[9] अधीनस्थ राजा भी उस समय जिनकी नीति, सेना, कोष आदि दूसरे राजाओं के अधीन होते थे । मंत्री, कोष, सेना, सहायक आदि का स्थान राजा के उपरान्त आता है। राज्यसंस्था समाज के कल्याण और उसकी सुख-सुविधा का उत्तरदायित्व वहन करती थी। प्रजाजनों के द्वारा उपार्जन का एक अंश राज्य के लिए देना भी यह प्रमाणित करता है कि प्रजा के सर्वविध संरक्षण का उत्तरदायित्व राजा पर था।

वाल्मीकि के अनुसार राजा और प्रजा में परस्पर पिता-पुत्र-का-सा सम्बन्ध होना चाहिए। राज्यतंत्र में राजा ही प्रधान होता है। संपूर्ण कार्यों की सफलता राजा पर होती है। सिद्धांतः तथा आंशिक व्यवहारों में भी राज्य की सर्वोच्च शक्ति उसके निवासियों में निहित थी। प्रजा अपने हितों से विरोध रखने वालों को राजा बनाने से रोक सकती थी तथा प्रजा विरोधी राजा को पदच्युत भी कर सकती थी। दशरथ राजा ने युवराज के लिए प्रजा की अनुमति माँगी थी। प्रजा विरोध के कारण सगर ने अपने पुत्र असमन्जस को राज्य से बहिष्कृत कर दिया था। राज्यसंस्था या राजा के अभाव में अनेक वाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। धार्मिक, आर्थिक स्थितियाँ सोचनीय हो जाती हैं। 'रामायण' के अनुसार उपर्युक्त बातें विस्तार से स्पष्ट है।[10] राजा की स्थिति प्रजाजनों के सामान्य जीवन के सुचारु निर्वाह के लिए आवश्यक थी । 'रामायण' में बताया गया है कि धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा सामाजिक कार्य-कलापों का सुचारु निर्वाह तभी सम्भव है, जब शासक अपने आवश्यक कर्तव्यों के प्रति जागरूक हो। यहाँ यह निर्देशित करना आवश्यक है कि इक्ष्वाकु कुल के सभी राजाओं में यह गुण देखे गए हैं कि वे अपने कर्तव्यों के प्रति एवं प्रजा-हित के लिए सदैव जागरूक थे।

राजा को प्रजा पर शासन करने के निरंकुश अधिकार नहीं थे। 'धर्मो: हि परमा गति: ।' अर्थात् धर्म की सर्वश्रेष्ठता स्वीकार की गई थी ।[11] राजा धर्म का सुचारु प्रवर्तन करनेवाला होता था। यह धर्म का निर्माता नहीं था। वह धर्म को अपनी इच्छा से नहीं चला सकता था। किसी राज्य या राजा की सुचारुता का परिचय वाल्मीकि प्रायः यही कह कर देते हैं कि वह धर्म तथा न्याय से शासन करता था। सहस्त्रों मनुष्यों से भरी हुई कल्याणमयी पुरी (नगरी) का इन्द्र समान तेजस्वी राजा दशरथ न्यायपूर्वक शासन करते थे।[12] अपने कार्यों का प्रभावपूर्ण रीति से पालन कराने के लिए राजा को

धार्मिक संस्था या धर्माधिकारी के समर्थन की आवश्यकता होती थी। ब्राह्मणों के द्वारा राजसूय, वाजपेय आदि यज्ञों का अनुष्ठान राजा के राज्यारोहण के अवसर पर सम्पन्न किया जाता था। राजसूय का अनुष्ठान राज्यारोहण के अवसर पर होने से इसका राजनैतिक महत्त्व भी था। दशरथ ने अपने राज्यारोहण के अवसर पर राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। राम ने भी अपने राज्यारोहण के अनन्तर राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव किया था।

वाल्मीकिय रामायण में राजतंत्र के अन्य किसी प्रकार के शासनरूप की सूचना उपलब्ध नहीं है। राजा को सैन्य बल के अधिपति के गुणों से भूषित होना आवश्यक था। राजा पद केवल क्षत्रिय के लिए नियत था। राजा अपनी दैवी-शक्ति में विश्वास करता था। राम ने वाली से कहा कि राजा पृथ्वी पर दैवी शक्ति के रूप में अवतीर्ण है। उसका अपमान या उस पर आघात नहीं किया जा सकता । राजा और प्रजा दोनों के अधिकारों की आलोचना करने पर राजा का अधिकार-क्षेत्र अधिक स्पष्ट हो जाता है। उस समय राज्य पर वंशक्रमागत राजा का अधिकार था, यह बात रामायण से सिद्ध है; परन्तु राज्य पर राजा का अनियंत्रित तथा मनमाना स्वामित्व प्रजा को स्वीकार नहीं था । राज्य मूलतः इसके निवासियों का ही होता था। किसी भी राज्य में राजा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, अपितु प्रजा के समृद्धि और कल्याण के लिए होता था। राजा नियमों का संरक्षक और समर्थक होता था। सभी क्षेत्रों में राजा से अनुकरणीय और आदर्श व्यवहार की अपेक्षा रखी जाती थी, क्योंकि प्रजा राजा के व्यवहारों को आदर्श समझकर उसका अनुकरण करती थी।

'राजा' शब्द का प्रयोग प्रजा के रंजन वा उसकी प्रसन्नता के संपादक होने का अर्थ मूल में रखता है। अतः प्रजा को सब प्रकार से प्रसन्न रखना राजा के प्राथमिक कर्तव्यों के अन्तर्गत आता था । वाल्मीकि ने राम को प्रजा को प्रसन्न रखने के गुण के कारण ही अपने अभीष्ट आदर्श राजा के रूप में देखा। रामायण के अनुसार प्रजारंजन की इस नीति का क्रियान्वयन राजा को प्रजा के कल्याण सम्पादक कार्यों का अनुष्ठान करते हुए तथा धर्म का आचरण करते हुए करना होता था । प्रजारंजन के लिए सर्वप्रथम राजा बाहरी तथा आन्तरिक विपत्तियों से प्रजा की पूर्ण सुरक्षा करता था। बाहरी आक्रमण से सुरक्षा के लिए अपना बल बढ़ाने के साथ ही उचित तथा समयानुकूल उपायों से शक्ति सन्तुलन बनाना भी राजा के लिए आवश्यक था। नियमों का निर्माण करना राजा की अधिकार सीमा में नहीं था, परंतु नियमों का पालन करना उसका कर्तव्य था। दुर्बल और गरीब लोग सबल तथा सम्पन्नों के साथ समाज में तभी रह पाते थे, जब राजा विधान और व्यवस्था को सुरक्षित रख सके। अपने शासन को योग्य तथा प्रभावशाली बनाने के लिए उसे दुष्टों को दमन करने का अधिकार था। मनु ने भी दण्ड को महत्त्व देते हुए कहा है-

"दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।[13]

प्रवीण राजा अपने अधिकार का इस निपुणता से प्रयोग करता था कि उसके भय से प्रजाजन न्याययुक्त मार्ग से पृथक् नहीं होते थे । वर्ण धर्म के पालन पर दृष्टि रखना राजा का कर्तव्य था । प्रजा के सुरक्षा के साथ ही राज्य के योगक्षेम के साधनों में वृद्धि करना भी राजा के कर्तव्यों में सम्मिलित था । राजा के शासन में राज्य धन-धान्य से समृद्ध होता था और प्रजाजन उसका हृदय से स्वागत करते थे । राष्ट्रीय जीवन में कृषि निर्वाह का प्रमुख साधन थी। अत: राजा को कृषि के साधन तथा व्यवसाय की सुरक्षा और अभ्युन्नति का पूर्ण ध्यान रखना होता था । राजा अपने

राज्य के प्रत्येक अच्छे और बुरे घटनाचक्र का उत्तरदायी होता था। इसलिए व्यक्तिगत रूप से वह अपने राज्य प्रशासनिक क्रियाकलापों का स्वयं निरीक्षण करता था। वह अपनी नीतियों के क्रियान्वयन का स्वयं प्रबन्ध करता था। सभा की अध्यक्षता करते हुए न्याय प्रति अपने दैनिक कर्तव्यों का निर्वाह करता था।

अपने भावी कर्तव्यों के पालन के लिए राजा के प्रारम्भिक प्रशिक्षण पर पूर्ण ध्यान दिया जाता था। राम तथा भ्राताओं के प्रशिक्षण से राजकुमारों की शिक्षा पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था का संपूर्ण आधार धर्म था। अतः धर्म शिक्षा में समस्त लौकिक तथा पारलौकिक रहस्यों का समावेश निपुणता से होता था। लोक कल्याण में रुचि और कर्म करने के उपायों का शिक्षण होता था तथा दृढ़ प्रशासक होने या प्रशासन में दक्षता की शिक्षा राजपुत्रों को अनिवार्य रूप से दी जाती थी। वेद तथा वेदांगों का प्रशिक्षण और अभ्यास उस समय की शिक्षा पध्धति का अनिवार्य अंग था। राजा की शिक्षा में सेना, संगठन, संचालन तथा शासन-दक्षता का प्रमुख रूप से समावेश था। विभिन्न शस्त्रों का प्रयोग तथा उनसे रक्षा राजशिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग था। अर्थशास्त्र भी राजनीति का महत्त्वपूर्ण अंग था। अर्थशास्त्र तथा दण्डनीति शासनतंत्र के लिए विभिन्न कृष्टिकोणों से प्रयुक्त किये शब्द हैं। कामसूत्र के अनुसार शिक्षा, भूमि, पशु, धान्य, घरेलू पात्र, मित्र आदि 'अर्थ' कहे जाने योग्य है। शासन की सुविधा तथा दण्डविधान की दृष्टि जब सामने रखी जाती थी, तब दण्डनीति शब्द का व्यवहार किया जाता था। इस प्रकार साम, दाम, भेद तथा दण्ड ये नीति चतुष्ट्य तथा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव तथा संश्रय षड्गुण राजा के लिए शिक्षणीय होते थे। प्रायोगिक शिक्षा का महत्त्व था। राजा की नैतिक निष्ठा का महत्त्व बहुत अधिक था। वाल्मीकि ने राजा के चतुर्दश दोषों का भी विवरण दिया है और उन्हें राजा के लिए वर्जनीय माना है। इन्हीं दोषों का वर्णन महर्षि व्यास ने भी किया है। नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानियों का अदर्शन, आलस्य, इन्द्रियों के वश में होना, अर्थों की अकेले चिन्ता करना, अनर्थज्ञों के साथ मन्त्रणा करना, निश्चित कार्यों का आरम्भ न करना, मन्त्र की अरक्षा, मंगल का प्रयोग न करना, एक ही समय में अनेक शत्रुओं पर आक्रमण करना ।[14] इन दोषों का विवरण राम ने भरत के प्रति किया है। राजपुत्र की शिक्षा शुष्क नहीं होती थी। ललित कलाओं का भी उसमें समावेश था। चित्रकला तथा संगीत की भी शिक्षा दी जाती थी।

राज्याभिषेक का विवरण रामायण में अनेक स्थलों पर मिलता है। अयोध्याकांड में राम के असमाप्त राज्याभिषेक का वर्णन है। किष्किन्धाकांड में सुग्रीव के वानरराज पद पर आसीन होने का विवरण है। राम के प्रथम राज्याभिषेक का वर्णन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस वर्णन से अनेक तथ्य प्रकट होते हैं। राजा की जीवित अवस्था में ही युवराज के रूप में चयन हो जाने की परम्परा, युवराज पद पर चयन की सुसंबद्ध प्रक्रिया, अभिषेक की विधियाँ तथा अनुष्ठान आदि बातें इस विवरण से ज्ञात होती हैं। राजा दशरथ ने राम को अपनी गुणगत परीक्षा के द्वारा युवराज बनाना निश्चित किया । बाद में उन्होंने अपनी मन्त्री परिषद के सामने प्रस्ताव के रूप में इस विषय को उपस्थित किया। इसके अनन्तर राजा दशरथ ने सामाजिक परिषद का आहवान किया। उसमें उन्होंने अपनी राजकार्य से निवृत्ति की इच्छा प्रकट की और अपने सर्वगुण श्रेष्ठ, जयेष्ठ पुत्र राम की युवराजपद पर अभिषिक्त करने का प्रस्ताव किया। राम के गुणों की प्रशंसा के साथ परिषद ने प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान की। रामायण के

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भावी राजा था युवराज के चुनाव में प्रजाजनों के परामर्श का विशेष महत्त्व था। राम के वनवास से वापस आने के अनन्तर उनका राज्याभिषेक वर्णित है। इसका प्रारम्भ अभिषेक से हुआ। पुरोहित वसिष्ठ की इस आयोजन में प्रमुखता थी।[15] सपत्नीक राम को रत्नजड़ित सिंहासन पर आरूढ़ कराकर मन्त्रियों तथा सेना के प्रमुख अधिकारियों ने जल से प्रोक्षण किया।

राज्य का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था, जो क्षत्रिय होता था। यह व्यवस्था आर्य राज्यों की प्रचलित थी। राजपद उत्तराधिकार क्रम से पिता से पुत्र के पास जाता था, परन्तु राज्य राजा की सम्पति के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था तथा राजा को अपनी इच्छानुसार सब कुछ करने का अधिकार प्राप्त नहीं था । प्रजाजनों में ही राज्य की सर्वोच्च प्रभुता निहित होती थी। प्रजा का प्रबुद्ध वर्ग न केवल राजा को उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में परामर्श देता था, अपितु जो उत्तराधिकारी प्रजा के हित के विरुद्ध कार्य करता था, उसे अधिकार से वंचित तथा राज्य सीमा से निष्कासित करने के लिए भी राजा को विवश करता था। राजा प्रजाओं की सम्मति का प्राय: पूर्ण आदर करता था और प्रजा का कल्याण और उसकी भावनाओं का आदर राजा के प्राथमिक कर्तव्यों में निहित था। राज्य में सुरक्षा व्यवस्था का पूर्ण प्रबन्ध भी राजा का प्राथमिक कर्तव्य था। राजा की शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अनिवार्य समावेश था। राजा प्रजानुरंजन में तत्पर रहता था। बाहरी विपत्तियों से प्रजा की रक्षा करता था और राज्य के भीतर प्रजा की समृद्धिकारक नीतियों के प्रवर्तन में सर्वदा तत्पर रहता था।

निष्कर्ष रूप में कहें तो, हिमालय जितने ऊँचे एवं व्यापक आदर्शों और सागर जैसे गम्भीर विचारों, का एक साथ किसी एक ग्रन्थ में समावेश हो पाया है तो वह 'रामायण' ही है। अपनी इन्हीं मौलिक विशेषताओं के कारण देश-काल की सीमाओं को तोड़कर 'रामायण' आज विश्व साहित्य की महान् कृति और महामुनि वाल्मीकि विश्वकवि के रूप में पूजित हो रहे हैं।[16] हमें लगता है कि वर्तमान समय में इस धरा पर रामराज्य की सख्त जरूरत है। तत्कालीन राजाओं की भूमिका को देखकर प्रतीत होता है कि वे सब प्रजा के लिए ही जीते थे। उनके सभी क्रिया-कलाप हम सबके लिए अनुकरणीय हैं। यदि सम्प्रति राजाओं के कर्तव्यों को भलिभांति निभाया जाए तो इस पावन भारतीय धरा पर रामराज्य अवश्य स्थापित हो सकता है !

**संदर्भ सूची :**

1. रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम्। यत्र रामचरित्रं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान् (बृहद्धर्म प्रथम खण्ड 30/47,51)
2. उपाध्याय, रामजी, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण-1993, पृ.114
3. रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया । करिष्यामि पुराणानि महाभारतंमेव च । (बृहद्धर्म 1/30/55)
4. वाल्मीकि पार्श्वादिह पर्यटामि 'मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिमं.....उपासते।
5. चतुर्वेदी, डॉ.शिवदत्त, वाल्मीकि रामायण में राजनीति, हंसा प्रकाशन, संस्करण-प्रथम 2010, फ्लैप से
6. महाभारत, शान्तिपर्व, 67/20
7. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, 7/76/42-43
8. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, 1/6/5
9. उपाध्याय, रामजी, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, संस्करण-1993, पृ.116
10. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, 2/67/09 से 24
11. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, 2/21/41
12. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, 1/6/28
13. मनुस्मृति, 7/18
14. महाभारत, 2/5/96 से 98
15. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, 6/128/59
16. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, प्रथम संस्करण-2009, पृ.169